सीधे-सवाल, टेढ़े–जवाब

● अमिताभ मुखर्जी

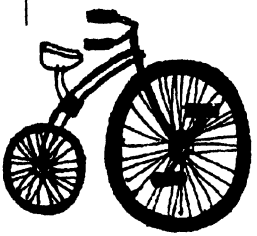

बच्चों ने सवाल पूछे – सोचा था जवाब देना आसान होगा। लेकिन जब लिखने बैठे तो जो कसरत हुई कि हमारे मुगालते दूर हो गए। सवालीराम के सवालों से जूझने का एक अनुभव।

इस पत्रिका के जो पाठक होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका.) के क्षेत्र में रहते हैं या रह चुके हैं, वे तो सवालीराम से भली भांति परिचित होंगे। औरों की जानकारी के लिए बता दें होशंगाबाद विज्ञान पढ़ने वाले बच्चों के दिमाग में जो ढेरों सवाल उठते हैं उन सबका जवाब कक्षा में तो मिल नहीं सकता। इसलिए एक सवालीराम की कल्पना की गई। बच्चे सवालीराम को अपने प्रश्न लिख सकते हैं। सवालीराम कई बार इन प्रश्नों के जवाब देता है तो कई बार उत्तर खोजने का तरीका इंगित कर देता है। आगे चलकर 'होशंगाबाद विज्ञान' पत्रिका में भी एक प्रश्नोत्तर स्तम्भ के रूप में सवालीराम के जवाब लिखे जाने लगे। बच्चों को खुली दावत दी गई कि वे सवालीराम को अपने सवाल भेजें। हर बच्चे को व्यक्तिगत रूप से जवाब दिया जाएगा और चुने हुए सवाल और जवाब पत्रिका में छपेंगे, यह आश्वासन था। उसके बाद क्या कुछ नहीं हुआ - पहले खतों का प्रवाह, फिर सैलाब; एकलव्य के कुछ

कार्यकत्ताओं के सपनों में भी सवालीराम का आना, जवाब खोजते-खोजते कुछ लोगों के असमय सफेद हुए बाल - कुल मिलाकर यह एक लम्बी कहानी है, जो अब भी चल रही है। आशा है कि 'एकलव्य' के कार्यकर्त्ता कभी इस को विस्तार से लिपिबद्ध करेंगे। फिलहाल मैं सवालीराम से जुड़े हुए कुछ व्यक्तिगत अनुभवों का ब्यौरा देना चाहता हूँ।

उन दिनों मैं कानपुर स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (I.I.T) में शोधरत् था। 'हार्डी' का पत्र आया, "सवालीराम के नाम बहुत खत आ रहे हैं। अगर हम कुछ खत कानपुर भेज दें तो क्या तुम लोग उनके जवाब लिखकर भेज सकते हो?" इतनी-सी बात! मैं भारत के एक चोटी के शैक्षणिक संस्थान में था। वैज्ञानिकों से घिरा हुआ। होनहार प्रतिभाओं के चमकते चेहरे, अध्ययन और अध्यापन का अनुकूल माहौल। इसमें छठी-सातवीं के बच्चों के सवालों के जवाब देना क्या मुश्किल था!

हमने एक टीम बनाई। इसमें शामिल थे कुछ शोध छात्र-छात्राएं और एम.एस सी. के विद्यार्थी। चूंकि मैं खुद भौतिकी विभाग में था, इसलिए टीम के लगभग सभी सदस्य भी इसी विभाग के थे। जीव विज्ञान के प्रश्नों को लेकर हमें थोड़ी परेशानी हो सकती है, यह हमने अनुमान लगाया था। किन्तु भौतिकी और रसायन के सवालों को पोहा-जलेबी की तरह चबा जाएंगे,

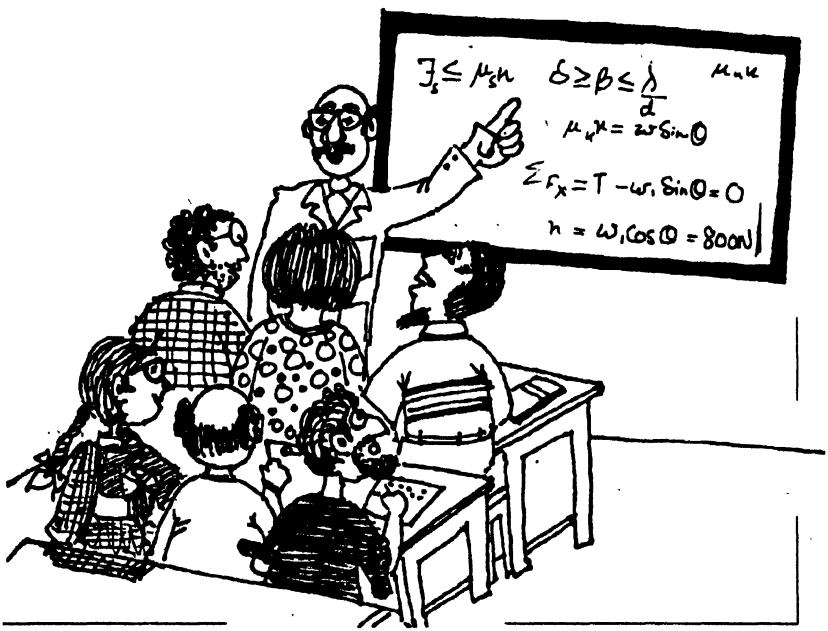

कुछ ऐसा ख्याल था हमारी टीम का। हमने तय किया कि हफ्ते में एक बार सभी मिलेंगे। सवाल बांटकर जवाब लिखे जाएंगे। उन पर साप्ताहिक गोष्ठी में सामूहिक चर्चा होगी। जिसके आधार पर उन्हें अंतिम रूप दिया जाएगा। छोटे सवालों के जवाब सीधे बैठक में ही लिखे जा सकते हैं। तब तक मुझे खतों का एक पुलिंदा मिल चुका था, और मुझे लगने लगा था कि यह काम इतना आसान नहीं होगा।

हमने अपने विषयों को छोटे-छोटे हिस्सों में बांट रखा था। जैसे 'प्रकाश', 'ध्वनि', 'यांत्रिकी' आदि। (Mechanics को हिंदी में यांत्रिकी कहते हैं यह हमारे अधिकांश सदस्यों को पता नहीं था। खैर इस पहलू पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है) पहले पुलिन्दे में बच्चों के जो सवाल मिले वे कुछ ऐसे थे, उदाहरण के लिए:

1. *आकाश का रंग नीला क्यों है?*
2. *किसी चीज़ को पीटने से आवाज़ क्यों होती है?*
3. *साइकिल को पहियों पर खड़ी करते हैं तो वह गिर जाती है, पर जब चलाते हैं तब क्यों नहीं गिरती?*
4. *पृथ्वी गोल क्यों है? (अब इसको किस हिस्से में डालेंगे। और तो और ये बच्चे तो विषय की सीमाओं को भी नहीं मानते)*

कुछ सवाल रसायन के थे? जैसे:

5. *जासौन के फूल पर चूना लगाने से रंग फीका क्यों पड़ जाता है?*

तो कुछ सवाल जीव-विज्ञान के थे:

6. *बाल क्यों गिरते हैं?*
7. *कुत्ता बैठने से पहले गोल-गोल क्यों घूमता है?*

यहाँ तक तो ठीक है पर, अब इस सवाल को भौतिकी का मानें या जीव-विज्ञान का?

8. *जब आदमी मरता है तो उसका शरीर भारी क्यों हो जाता है?*

दूसरी बात यह थी कि अक्सर सवाल विज्ञान के दायरे के बाहर होते थे, मसलन:

9. *आत्मा है या नहीं?*

और इस 'सवाल' को किस नाम से पुकारेंगे:

10. *सवालीराम जी क्या आप हमें अपना फोटो भेजेंगे?*

तीसरी बात यह थी कि बच्चे विज्ञान की सुलझी हुई भाषा और शैली से अपरिचित थे। 'पृथ्वी गोल क्यों है?' इस प्रश्न का मकसद क्या है - 'पृथ्वी गोल कैसे बनी?' या 'हमें कैसे पता चलता है कि पृथ्वी गोल है?'

बहरहाल, हमारी बैठकें शुरू हुईं। शोध-छात्रों में इस नए और अनोखे काम के लिए काफी उत्साह था। जवाब लिखने में किस तरह की समस्याएं आएंगी यह हमारी टीम ने जल्दी ही पकड़ लिया। उदाहरण स्वरूप पहले प्रश्न, 'आकाश का रंग नीला क्यों है', को लेकर कुछ इस तरह की बातचीत हुई।

- "इसका कारण तो रैले स्केटरिंग है, पर यह किस तरह से लिखा जाए ?"
- "स्कटरिंग को हिन्दी में क्या कहते हैं?"
- "बिखरना, प्रकाश का बिखरना।"
- "इसमें असली बात तो यह है कि छोटी तरंग दैर्ध्य की तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं।"
- "वेवलेंथ की हिन्दी है तरंग-दैर्ध्य, पर क्या हम इस पारिभाषिक शब्द का उपयोग कर सकते हैं?"
- "अरे नहीं, सातवीं के बच्चे ने सवाल पूछा है।"
- "यूँ कह सकते हैं कि हवा के अणुओं से टकराकर प्रकाश बिखर जाता है। अब सूर्य के प्रकाश में लाल,पीली, हरी, नीली, बैंगनी, सभी रंग की किरणें होती हैं। वैज्ञनिकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रकाश एक तरह की तरंग है। अलग-अलग रंग की किरणों की तरंगों की लम्बाई अलग-अलग होती है। लाल तरंग लम्बी होती है और नीली तरंग छोटी।"
- "हाँ, छोटी तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं और बड़ी तरंगें कम। यानी लाल रंग कम बिखरता है और नीला ज़्यादा। इन बिखरी हुई किरणों के कारण आकाश नीला लगता है।" (यह बातचीत काफ़ी लम्बी रही, मैंने सिर्फ सार दिया है)

अब बात बन रही थी। एक आम सहमति बन चली थी कि उत्तर कुछ ऐसा ही होना चाहिए। एक शोध छात्र 'क' ने कहा कि वह इस उत्तर को लिख कर अगली बैठक में ले आएगा। पर अगली बैठक में एक नया और अनापेक्षित सवाल खड़ा हो गया। 'क' ने कहा, "मैंने जवाब तो लगभग लिख लिया है। लेकिन अगर बच्चा पूछे आकाश बैंगनी क्यों नहीं है तो इसका क्या उत्तर होगा?" ऐं! लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सच, यह तो किसी ने सोचा ही नहीं था! छोटी तरंगें ज़्यादा बिखरती हैं, इसमें कोई शक नहीं। रैले ने सौ साल पहले यह बात सिद्ध की थी।*

दिखाई देने वाले प्रकाश में बैंगनी तरंगें सबसे छोटी होती हैं। तो आकाश को बैंगनी होना चाहिए था! किसी ने कहा "कभी-कभी आकाश बैंगनी-सा भी लगता है।" पर यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं था। इसका मतलब हमारी समझ में कहीं कमी थी। किसी ने लाइब्रेरी में रैले के पुराने शोधपत्र ढूँढ निकाले, पर वहाँ भी जबाब नहीं मिला।

अन्त में कई किताबें छानकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसमें आँख की संरचना की भी भूमिका है। हमारी आँखें बैंगनी किरणों के प्रति उतनी संवदेनशील नहीं हैं जितनी कि नीली के लिए हैं। बैंगनी किरणें ज़्यादा बिखरती हैं। पर यदि 'बिखरने की मात्रा और आँख की संवेदनशीलता का गुणनफल' निकाला जाए तो यह, नीली किरणों के लिए सबसे

* एक गणित के सूत्र के रूप में रैले ने कहा था कि बिखरने की मात्रा तरंग लम्बाई के चौथे घात के विपरीत अनुपात में होती है:

$$\text{बिखरना} \sim 1/(\text{तरंग लम्बाई})^4$$

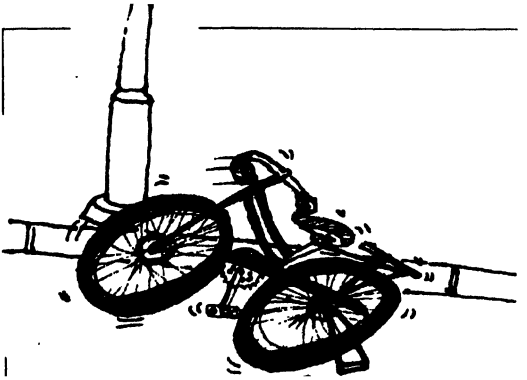

ज़्यादा होगा। इस तरह एक सीधे सवाल का जवाब टेढ़ा निकला। 11वीं-12वीं की किताबों में इस सवाल का जो जवाब दिया जाता है व अधूरा है। और मज़ेदार बात यह है कि अब भी कहा नहीं जा सकता कि जवाब पूरा है। हमारी चर्चाओं में ऐसे सवाल भी उठाए गए –

"कभी-कभी (सूर्योदय और सूर्यास्त के समय) आकाश का कुछ अंश लाल लगता है। उस समय बादल हों तो वे पीले या नारंगी रंग के हो जाते हैं लेकिन हरा रंग कभी नहीं दिखाई देता। क्यों?"

साइकिल वाले सवाल में भी कुछ ऐसा ही हुआ:

"यह तो 'एंग्युलर मोमेंटम' यानी कोणीय वेग का कमाल है।"

"सरल भाषा में कह सकते हैं कि कोई भी चीज़ जब घूमती है तब उसकी दिशा बदलना बहुत मुश्किल होता है।"

"हाँ, जैसे घूमता हुआ लट्टू।"

"एक सवाल है - अगर साइकिल पर कोई सवार न हो और उसे केवल धक्के से चला दिया जाए तो वह बहुत जल्दी लड़खड़ा जाती है। लेकिन अगर सिर्फ एक पहिए को लुढ़का दें तो वह काफी दूर तक जाता है। ऐसा क्यों?"

"हाँ, कोणीय वेग तो दोनो में एक-सा ही है।"

"लगता है यह प्रश्न साइकिल की बनावट से जुड़ा हुआ है। दो पहिए, रॉड, हैंडिल... सोचना पड़ेगा।"

एक अन्य शोध छात्र 'अ' ने कहा कि वह इस बात की तह तक जाना चाहता है। यान्त्रिकी की किताबों में स्पष्ट जवाब नहीं मिला। उसने विज्ञान के विश्व कोश टटोले। फिर आगे की एक बैठक में 'अ' ने हमें अपनी खोजों के बारे में बताया। साइकिल की स्थिरता कई चीज़ों पर

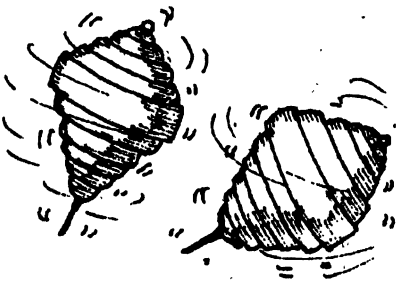

निर्भर करती है, जैसे पहियों के व्यासों का अनुपात, भारकेन्द्र कहां है, फोर्क (चिमटा) की बनावट आदि।

शुरू-शुरू में कुछ साइकिलें ऐसी होती थीं। इनमें पहियों के व्यासों का अनुपात बहुत महत्व रखता था।

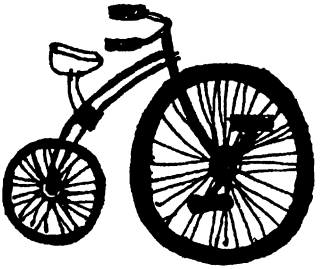

बाद में पाया गया कि अगर हम चाहते हैं कि साइकिल डोले भी कम और उसे चलाने में दम भी कम-से-कम लगे, तो पहियों को बराबर बनाना बेहतर है। आधुनिक साइकिलों में पहिए बराबर ही होते हैं। दूसरा सवाल है भारकेन्द्र का। यह तो एक आम अनुभव है कि जिस वस्तु का भारकेन्द्र ऊँचा होता है वह हल्के-से धक्के से हिल जाती है।

आधुनिक साइकिलों में विभिन्न मॉडलों में सीट और रॉड की बनावट अलग-अलग होती है। ज़ाहिर है कि जिस मॉडल का भारकेन्द्र ज़्यादा नीचे होगा वह ज़्यादा स्थिर होगा।

ये बातें तो हमारी टीम के लिए नई नहीं थीं। पर 'अ' ने एक और बात बताई जिसके बारे में लोगों ने कभी सोचा नहीं था। साइकिल के फोर्क अर्थात् अगले हिस्से की बनावट का उसकी स्थिरता पर बहुत असर पड़ता है। इसको लेकर कई प्रयोग हुए हैं। वस्तुतः फोर्क बनाते समय स्थिरता और चलाने में आसानी, इन दोनों में से एक को कम करना ही पड़ता है। अगर फोर्क का आकार चित्र 'क' की तरह हो, तो साइकिल का संतुलन बहुत बढ़िया होगा, पर चालक के लिए उसे चलाना (विशेषकर मुड़ना) बहुत मुश्किल होगा। इसके विपरीत चित्र 'ख' की तरह बनी साइकिल को मोड़ना बहुत आसान होता है, पर वह बहुत जल्दी लड़खड़ा जाती है। आजकल ज़्यादातर साइकिलों का फोर्क इन दोनों के बीचों-बीच, चित्र 'ग' की तरह होता है।

लेकिन 'अ' की खोजों से सबसे बड़ी बात जो सामने आई वह है - सवार की भूमिका। बात सीधी-सी है। जब साइकिल थोड़ी टेढ़ी हो जाती है, तब सवार अपने भारकेन्द्र को ज़रा-सा खिसका देता है, जिससे झुकाव की विपरीत दिशा में एक बल काम करता है। साथ ही दिशा को सुधारने के लिए वह हैंडिल का उपयोग करता है। इससे साइकिल फिर सीधी हो जाती है। यह काम सवार अनजाने में ही लगातार करता रहता है। यही कारण है कि जहाँ धक्के से चलाई हुई बिना सवार

की साइकिल आधा मीटर भी सीधी नहीं चलती, सवार समेत साइकिल चलती रहती है। यानी "साइकिल कोणीय वेग की वजह से नहीं गिरती" कहना पूरी तौर पर सही नहीं है!

कई और सवालों के लिऐ भी हमें इसी तरह से लाइब्रेरी की किताबें छाननी पड़ीं। अक्सर स्कूली किताबों में जो 'मानक' जवाब मिलते हैं वे अधूरे होते हैं या फिर 'सरलीकरण' के चक्कर में असली मुद्दों को छूते ही नहीं। यह भी स्पष्ट हुआ कि विशेषज्ञों की समझ में भी अक्सर खामियाँ रह जाती हैं।

कुछ और, खासकर 'जीव-विज्ञान' के सवालों में, दूसरी तरह की समस्याएं आईं। कुत्ते वाले सवाल (प्रश्न6) को ही लीजिए। क्या सचमुच कुत्ते ऐसा करते हैं? हम में से किसी ने नज़दीक से कुत्तों का अवलोकन नहीं किया था - कम-से-कम उनके बैठने से पहले की क्रिया का तो बिल्कुल नहीं। इसी तरह का एक और सवाल था कि टिटहरी पेड़ पर क्यों नहीं बैठती?

टिटहरी होती क्या है? एक पक्षी, यह तो पता था, लेकिन टीम में किसी को उसकी पहचान नहीं थी। वह सचमुच पेड़ पर बैठती है या नहीं, यह जानकारी तो दूर की बात है। इस तरह के सवालों में हमने यह पाया कि बच्चों ने काफी बारीकी से अवलोकन किया है, और जवाब देने के लिए हमारे पास समझ तो छोड़िए, तथ्य ही नहीं हैं।

कुछ सवाल आपस में मिलते-जुलते थे। इनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी सवाल थे जैसे कि दाँत क्यों सड़ने लगते हैं? इससे मिलते-जुलते सवाल

कई बच्चों ने पूछे थे। मौसम को लेकर पूछे गए सवाल भी इस श्रेणी में आते हैं जैसे कि बादल क्या हैं? या बिजली क्यों गिरती है? हमने तय किया कि 'बादल-बिजली-बरखा' सम्बन्धी एक लम्बा लेख लिखेंगे, जिसमें ये और इन से मिलते-जुलते प्रश्नों के उत्तर शामिल होंगे। एक एम.एस सी. की छात्रा ने काफी मेहनत करके लेख

लिखा - अंग्रेज़ी में। अब इसका हिन्दी अनुवाद करना था। लेकिन हाय! बैठक में आते समय उस लड़की की साइकिल के कैरियर से वह लेख कहीं गिर गया। (शायद उसका भारकेन्द्र कुछ ऊँचा था!) और बहुत ढूंढने पर भी नहीं मिला।

इसके बाद थोड़े दिनों में हमारी टीम बिखर गई - एम.एस.सी. के छात्र पास होकर चले गए। और लोग भी अपने कामों में कुछ ज़्यादा व्यस्त हो गए। इस तरह यह दौर यहीं समाप्त हो गया।

आज पीछे देखें तो यह अनुभव कैसा लगता है? जो लोग इस काम से जुड़े थे, उनकी इस बात पर सहमति है "पता नहीं हम बच्चों को कितना समझा पाए पर इस अनुभव से हमने बहुत कुछ सीखा और समझा है।" कुछ सबक जो हमने सीखे वे इस प्रकार हैं:

- हमने जाना कि प्रायः हमारी समझ अधूरी होती है। अक्सर पारिभाषिक शब्द समझ का स्थान ले लेते हैं।
- दूसरे को समझा पाना, वह भी सरल भाषा में, यही समझ की परख है।
- विषयों की सीमाएँ कृत्रिम हैं। इसलिए बड़ों के सवाल अक्सर सीमित होते हैं, जबकि बच्चों के सीधे सवाल हमें धराशाई कर देते हैं।
- बच्चे प्रकृति का अवलोकन करते हैं, अक्सर काफी बारीकी से।
- बच्चे जिज्ञासा और खोज की प्रवृत्ति को स्वाभाविक भावनाओं से अलग नहीं करते। तभी प्रश्नों के साथ-साथ सवालीराम को अपना प्यार भेजना नहीं भूलते।

यह तो स्पष्ट है कि सवालीराम को लिखे हुए बच्चों के खत हमें बच्चों के सामाजिक परिवेश, मनोवृत्ति व सोचने के ढंग के बारे में बहुत कुछ बताते हैं। इनका गहन रूप से अध्ययन किया जाए तो स्कूली पाठ्यक्रम को सुधारने में काफी मदद मिल सकती है। इस लेख में मैंने केवल कुछ अनुभवों को लिपिबद्ध किया है। आशा है कि आगे भी इस तरह के विश्लेषण का प्रयास किया जाएगा।

वैसे क्या आप भी सीधे सवालों से जूझने की इस अनोखी प्रक्रिया को आज़माना चाहेंगे?!

(अमिताभ मुखर्जी - भौतिकी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

●●●